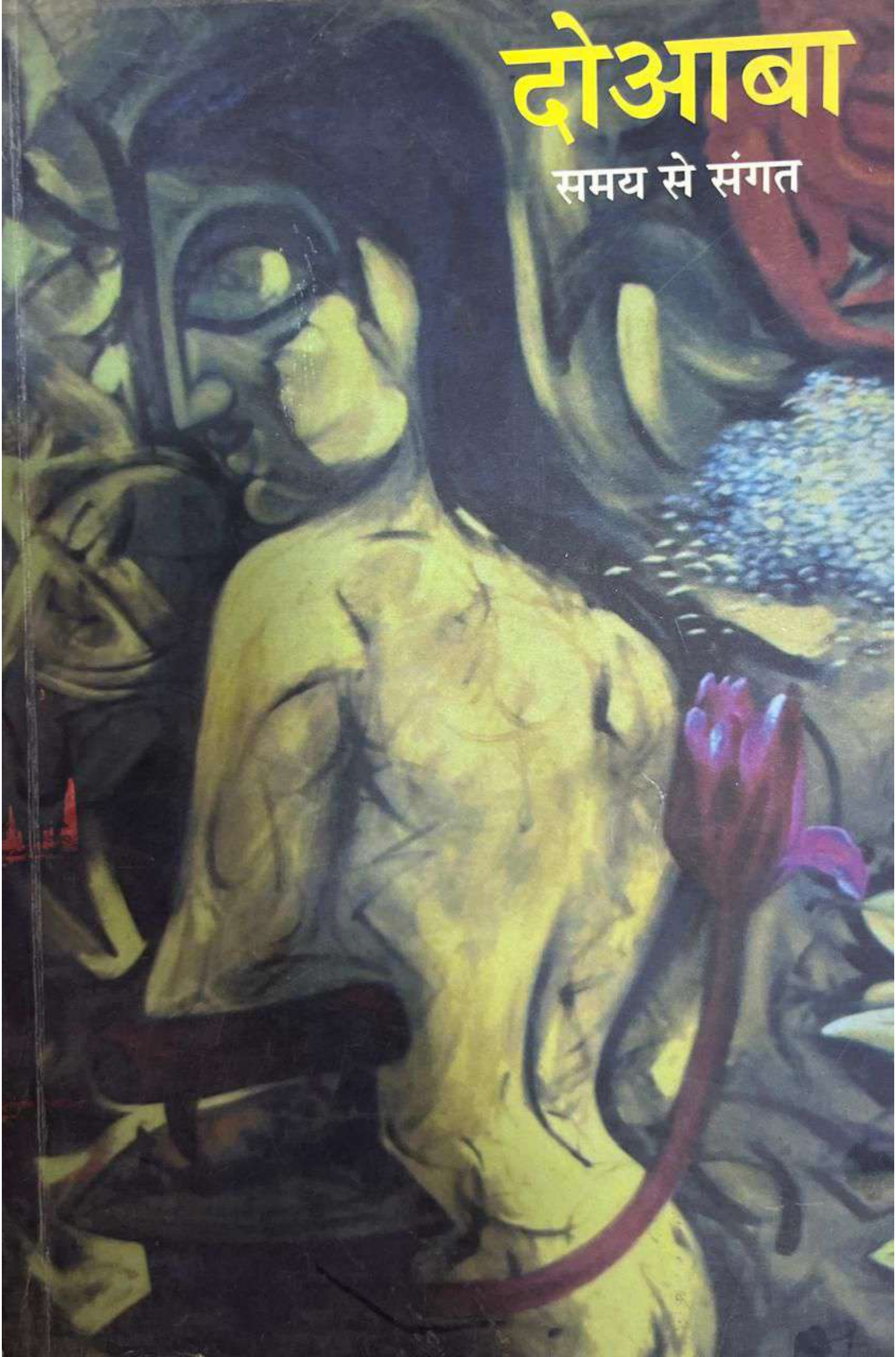
दोआबा
समय से संगत

भुनेश्वर भास्कर

अमरेश कुमार

आकार की खोज

निराकार में आकर खोजना और पुनः आकार में निराकार को प्रस्तुत करना अपने-आप में सिर्फ़ चिंतन है। चिंतन प्रक्रिया है जिसे आंखें बंद करके कुछ रूपाकारों को हम देखते हैं और ज्योंही आंखें खुलती हैं तो आकृतियां विस्मृत हो जाती हैं। कुछ कलाकार-शिल्पकार ऐसे ही होते हैं जो निरंतर निराकार में आकार खोजते रहते हैं। खोजने के क्रम में कभी-कभी वे स्व में विलीन भी हो जाते हैं, जहां न कोई वाह्य दुनिया होती है और न कोई हलचल। तब है कि स्व में आने तथा बाहरी दुनिया के साथ तालमेल बिठाने तथा आंतरिक सुखद क्षण का अहसास सभी नहीं कर पाते। स्वयं कलाकार जब चिंतन-प्रक्रिया में रहता है तो उसे भी पता नहीं होता कि कब कौन-सी दुनिया दिखाई देगी। ऐसे कलाकारों की कलाकृतियां हमें शून्य पर ले जाकर खड़ा करती हैं जहां आत्मबोध और शाश्वत ज्ञान का आभास होता है। उन कलाकृतियों के माध्यम से हम अपने भीतर एक आभा का प्रवेश होते हुए महसूस करते हैं और भौतिक संसार से अलग अध्यात्म की दुनिया में झांकने पर मजबूर हो जाते हैं। अमरेश कुमार की कलाकृतियों के बीच से जब हम गुज़रते हैं तो बरबस ही वो अपने भीतर खींचती चली जाती हैं।

पटना, बिहार के युवा मूर्तिकार अमरेश कुमार के मूर्तिशिल्पों को जब हम देखते हैं तो कई स्तरों पर उल्लेखनीय पाते हैं। उनकी कृतियों पर बातें करनी हैं तो सबसे पहले हमें उनके आरंभिक दौर की कलाकृतियां जो टेराकोटा माध्यम में सृजित हुई हैं, उनका उल्लेख करना पड़ेगा। क्योंकि शुद्ध रूप से अमरेश की कला की दुनिया वहीं से शुरू होती है। उनकी मृण्मय मूर्तियां विषय-वस्तु के साथ-साथ माध्यम के रूप में भी अपने भीतर एक कहानी छुपाए रहती हैं।

बचपन में पतली-संकरी गलियों या चौखट्टों पर बैठकर दोनों पैरों को सटाकर सुपली पर गीली मिट्टी रखकर दोनों मुक्कों से मारते हुए लयबद्ध होकर उसके मुंह से 'रामजी-रामजी पानी द, घोड़वा पियासल बा, ओदा-ओदा ले ले जा सूखल-सूखल देले जा... हे काने टूस,

हो काने भुड़ूक...।' गीत गाता होगा तथा कोमल-कोमल नन्हें-नन्हें हाथों से अनगढ़ मूर्तियां गढ़ता होगा तो यह समझ पाना काफ़ी कठिन होगा कि यही मिट्टी और यही अंगुलियां भविष्य में अपनी संस्कृति को मूर्तिरूप में ढालेंगी। आरंभिक दिनों में मिट्टी कोमल थी, भावनाएं कोमल थीं और मन कोमल था। संवेदनाएं कोमल थीं तब अभिव्यक्ति भी कोमल थी लेकिन उसका असर कोमल नहीं था। अभिव्यक्ति के तेवर सशक्त थे। चाहे वो घर हो, परिवार हो, चायवाला हो, बैंडपार्टी हो, बाजा वाला हो, सभी कलाकृतियां पारिवारिक-सामाजिक स्थितियों को व्यक्त करती हैं। कोठिला हो या घर में टीवी हो, उसके माध्यम से लोक जन-जीवन की इच्छाओं और कुंठाओं को देखा जा सकता है। अमरेश टीवी की बात तब करते हैं जब गांवों-देहातों में टीवी बहुत कम हुआ करती थी। किसी संभ्रांत परिवार के घर में एक टीवी होती थी और टोले-मुहल्ले के बच्चे वहां एकत्रित होते थे उसे देखने के लिए। यह जो मनोभाव है वह सिर्फ़ अमरेश का नहीं है, बल्कि उस समाज का है, उस इलाके का है, उस जन-समुदाय का है जहां से कलाकार आया है। वह अपने साथ एक अतीत लेकर आया है। घरौंदा महज एक खिलौना नहीं होता। अगर एक पक्ष उसका खेल है तो दूसरा पक्ष यह भी है कि उसके माध्यम से बालिकाओं, युवतियों को घर-गृहस्थी के बारे में भी बताया जाता है। जिन्हें बाद में घर-परिवार संभालने की जिम्मेदारी दे दी जाती है। घरौंदे के माध्यम से अमरेश इन्हीं तथ्यों की बातें करते हैं, जो सुखमय जीवन का एक हिस्सा है। बैंडपार्टी के सदस्य किसी की खुशी में गाते-बजाते हैं और माहौल को खुशनुमा बना देते हैं। उनके थाप पर हम थिरकने लगते हैं लेकिन उनके आंतरिक दर्द को हम कभी महसूस नहीं करते, जिनके घर शाम को खाने के लिए रोटी नहीं है। औरत बच्चे भूखे इंतज़ार करते हैं कि वह आएगा तो शायद कुछ लेकर आएगा, लेकिन नहीं...। इसका जो दर्द है, उसे छुपाते हुए दूसरों को खुश करना चाहता है...। जीवन का दर्शन भी तो यही है कि खुद दुख में रहो लेकिन दूसरों को खुश रखना सीखो। इसी तरह आदिवासी जन-जीवन पर सृजित मूर्ति-शृंखला में उनकी त्रासदी, दयनीयता, दर्द एवं निरीहता तो है ही, उनका संघर्ष एवं स्वप्न भी दृष्टिगत होते हैं। उनका आदिवासी पात्र समस्याओं से लड़ता हुआ नज़र आता है। वह जीवन जीना चाहता है। जीवन-संघर्ष में जाना चाहता है। कलात्मकता की दृष्टि से अमरेश की टेराकोटा मूर्तियां काफ़ी महत्त्व रखती हैं। चाहे वह रूपाकृति की बनावट हो, आकृतियों में सहजता हो या उनका संयोजन हो। कई ऐसी विशाल कृतियां हैं जो टेराकोटा माध्यम के लिए कठिन हैं। इसलिए भी अमरेश की इन कृतियों की चर्चा होनी चाहिए।

अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते हैं तो स्वरूप भी बदल जाते हैं। अमरेश जब पत्थर जैसे कठोर माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करने लगे तो उनके विषय सूक्ष्म होते चले गए। पत्थर का अपना कुछ गुण होता है, उसका एक चरित्र होता है। उसके चरित्र एवं गुण को देखते हुए फॉर्म सृजित करना होता है। हालांकि पत्थर माध्यम में एक तरफ़ श्रम की अधिकता है तो छेनी-हथौड़ी का संतुलन भी ज़रूरी है। अगर एक आघात भी अधिक पड़ा तो पत्थर का सारा रूप ही बदल जाएगा। ख़ासकर अमरेश के मूर्तिशिल्पों में कलाकार को सतर्कता ज़्यादा बरतनी

पड़ती है। बाह्य रूप में पत्थर के टुकड़े को चारों तरफ़ से गोल तराशना ही कठिन है। अमरेश ने माटी जैसे कोमल माध्यम के साथ जितनी सहजता के साथ खेला उतनी ही सहजता के साथ पत्थर जैसे कठोर माध्यम में भी सृजन किया। ये मूर्तियां हमें अध्यात्म की ओर ले जाती हैं। गोलाकार आकार के पत्थरों में बनारस और वहां के रीति-रिवाज काफ़ी सम्मोहक हैं। चूंकि गोलाकार अपने-आप में निराकार एवं अनंत का प्रतीक है। उसके गर्भ में कुंड, स्नान-स्थल, ध्यान मग्न स्नान करते लोग, पदचिह्न, गर्भगृह आदि अलग-अलग रूप में सृजित हैं जिसके माध्यम से आंतरिक अनुभव से रू-ब-रू होते हैं। छठ पूजा में इस्तेमाल होने वाले लोटे के भीतर जिस तरह बनारस के घाट एवं गंगा नदी को सृजित किया गया है, वाकई , गागर में सागर जैसा है। जल-अर्पण के रूप में इस्तेमाल लोटे के भीतर एक दुनिया दिखती है, जो आस्था की है। कहीं-कहीं गोले के ऊपर भारतीय शिल्प-साधना के अवशेष अमरेश के चिंतन-मनन के विषयों तक पहुंचने के माध्यम हैं। कहीं-कहीं कलाकृतियों के भीतर पानी एवं अंधेरे में किए गए आइने के प्रयोग से और भी अनंतता का अहसास होता है। अमरेश की कलाकृतियां इसलिए भी ख़ास हो जाती हैं कि वे थ्री डाइमेंशन से आगे फोर्थ डाइमेंशन में काम करते हैं। इसलिए उसमें काम करने की गुंजाइश ज़्यादा हो जाती है। यथा घर के बाहर दीवारों पर छोटे-छोटे पशु-पक्षी हैं तो अंदर वाले भाग में दीरखा, उसके ऊपर दीया आदि भी बनाते हैं। गर्भ-गृह के बाह्य में पुरातन अवशेष की झलक तो उसे काटकर अंदर में गर्भ-गृह का दृश्य। इसी तरह लोटे के अंदर बनारस की गंगा एवं गंगाघाट। इसके अलावे अनेकों कलाकृतियां हैं जो इस तकनीक में बनी हैं और कलाकार की कल्पनाशीलता को दर्शाती हैं। जिसका अवलोकन करते समय हम उनकी कल्पनाओं के साथ हो जाते हैं और साथ-साथ चलने लगते हैं। पत्थर माध्यम में बनी ज़्यादातर कलाकृतियां धार्मिक अथवा लोक आस्थाओं को अपने भीतर समेटती हैं। पूरी शृंखला हमारे मानस-पटल को आहिस्ता-आहिस्ता कुरेदती रहती है, चाहे वह पदचिह्न हो या जलकुंड हो। इसके साथ ही अमरेश ने पत्थर-मूर्तियों के साथ ही छोटे-छोटे ब्रांज तथा टेराकोटा की मूर्तियों, फॉर्मों का जो प्रयोग किया है, काफ़ी कलात्मक बन पाया है। जैसे - जलकुंड के आगे-पीछे सैकड़ों मानवाकृतियां उस हुजूम को दर्शाती हैं, उस आस्था को दर्शाती हैं जो दैव के प्रति आम अवाम की है।

प्रारंभिक दौर से ही अमरेश ने विभिन्न आकृतियों को एक साथ संयोजित कर एक विषय में बांधने की कोशिश की है। चाहे वह बैंडपार्टी हो, माई ओल्ड होम हो या खटिये के साये में बैठी मानवाकृतियां हों। हम निरंतर उनके साथ देखते हैं कि बड़ा विषय सृजित करने के लिए दस, बीस, पचास आकृतियों का संयोजन एक साथ करते हैं। यह उनके लिए बहुत सकारात्मक है, क्योंकि उसी का विस्तार है कि आज वे संस्थापन भी कर रहे हैं। अमरेश

की ज़्यादातर संस्थापन कृतियां उनकी मूर्तियों का विस्तार हैं। अचानक वे संस्थापन करने लगे, ऐसी बात नहीं है। यह क्रमिक विकास है। पिछले दिनों अपने गांव हाटपोखर, जितौरा में अमरेश ने जो संस्थापन बनाया वह काफ़ी कलात्मक तो था ही साथ ही गंवई जन-जीवन का एक हिस्सा भी। क्योंकि आम जन-जीवन में पेड़ और खटिये की ज़रूरत बहुत है। एक तरफ़ पेड़ जीवन देता है तो खटिया जीवन-आश्रय का प्रतीक है। एक तरफ़ जीव है दूसरी तरफ़ निर्जीव है पर संबंध और ज़रूरत दोनों की है। इसी तरह अलमीरा कृति में अमरेश ने भले ही अपनी फाइल एवं दस्तावेज़ रखा हो लेकिन प्रतीकात्मक रूप से सरकारी दफ़्तरों की दशा-दुर्दशा पर तीखा प्रहार है जहां अलमीरा में रखी-रखी फाइलें सड़ जाती हैं। फाइल के पन्नों को झिंगुर एवं दीमक खा जाते हैं। विषय-वस्तु के आधार पर देखें तो उन्होंने जैसे-जैसे माध्यम बदला है, वैसे-वैसे विषय भी बदल गए हैं। हाल की कृतियां जो मुख्यतया संस्थापन कला-रूप में है उसमें भगवान बुद्ध तथा उनका ज्ञान-स्थल जिसमें फाउंड मैटेरियल टीन के डब्बे का प्रयोग करते हुए उसके साथ छोटी-छोटी बुद्ध प्रतिमाओं को एक सूत्र में बांधकर एक बात करती हैं, जहां शांति है, सुकून है। हनुमान की मूर्ति को लेकर अमरेश ने कई कृतियों का सृजन किया है। कहीं समूह में पुल बांधने की गाथा है तो कहीं विश्व-मानचित्र पर छलांग लगाने या उसे नापने की परिकल्पना है। यहां वे आम-आदमी के भीतर छुपी शक्ति की बात करते हैं। हर व्यक्ति के भीतर वो शक्ति है जिसके प्रयोग से वह समुद्र लांघ सकता है। विश्व की दूरी नाप सकता है बशर्ते उसे पहचाने, आत्मविश्वास जगाए, आत्ममंथन करे और सही दिशा में उसका प्रयोग करे। इसी तरह भोंपू के समवेत प्रयोग से जिसकी आवाज कान के छिद्र को फाड़ देती है। अनायास किसी गांव, शहर या महानगर में शोर-शराबा होता रहता है। लोग अपनी खुशी के लिए दूसरों के कष्ट या हानि को नहीं देखते। हमारे घर के पास दिल का मरीज बैठा है। उसे शोर-शराबा नहीं चाहिए लेकिन हम देर रात तक शोर करेंगे।

अमरेश ने माध्यम को लेकर हमेशा प्रयोग किया है। यूं कहें तो वे प्रायोगिक मूर्तिकार हैं। वे कहते भी हैं कि माध्यम का चुनाव विषयानुसार होता है। देखना पड़ता है कि विषय का माध्यम से कितना संबंध है। इसमें कितनी संभावनाएं हैं। इन सबसे बड़ी बात कि सशक्त रूप में अभिव्यक्ति कर सके इसके लिए मैटेरियल के गुण को पकड़ना पड़ता है। विषय वस्तु के साथ तालमेल बैठाना पड़ता है। इसीलिए अमरेश कुछ अलग कर जाते हैं।

अमरेश ने लोक परंपराओं, रीति-रिवाजों या लोक तत्वों को अपने मूर्तिशिल्पों में जगह देकर उसे अत्यधिक प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण बनाने की कोशिश की है। कला-चेतना का क्रमिक विकास होने के कारण उन तत्वों के प्रति इनका ज़्यादा लगाव है जो जीवन को गति देते हैं। ऐसे कलाकारों से हमारी उम्मीदें तो बढ़ती ही हैं लोगों की अपेक्षा भी बढ़ जाती है। इसलिए भी ऐसे कलाकारों की चर्चा होनी चाहिए। इसी तरह कुछ नई, चकित करने वाली, संवेदित करने वाली, हमें अंदर से कुरेदने वाली कलाकृति दृष्टिगत होगी, ऐसा हमें विश्वास है।